तमिल शैवभक्तों की कथाएँ

तमिलसाहित्य में भी हिन्दीसाहित्य के सूर, तुलसी, तथा कबीर जैसे अनेक संतकवि हुए। ये लोग न केवल कवि एवं गायक थे अपितु भगवत्-साक्षात्कार से युक्त चमत्कारी व्यक्तित्वसम्पन्न संत भी थे। तमिल वैष्णवभक्तकवियों को आलवार तथा शैवभक्तकवियों को नायन्मार् अथवा नायनार कहा जाता है। तमिलसाहित्य में अनेक शैवसंतकवियों में चार का विशिष्ट स्थान है। इन्हें नालवर(चार महान्) कहा जाता है। इन चारों का जैन एवं बौद्ध धर्म से अनेक रूपों में संघर्ष हुआ और इनके प्रयास से ही तमिल-प्रदेश में शैवधर्म की पुनः प्रतिष्ठा सम्भव हुई। ये चार शैवकवि 'शैव-समय-परमाचारियर'(शैव-धर्म-परमाचार्य) के रूप में विख्यात हैं। उनके नाम हैं- तिरुज्ञानसम्बन्धर, तिरुनावुक्करसर(प्रसिद्ध नाम अप्पर), सुन्दरमूर्ति स्वामिगल्(प्रसिद्ध नाम सुन्दरर) और माणिक्कवाचकर(या मानिक्कवाशगर)। इन्हें स्नेहपूर्वक 'नालवर' भी कहा जाता है। यद्यपि इनसे पूर्व नक्कीरर् तथा कारैक्काल अम्मैयार आदि अनेक श्रेष्ठ शैवभक्तकवि हो चुके हैं परन्तु विशिष्ट 'परिचारक' एवं उच्चकोटि के काव्य-स्त्रष्टा तथा सिद्धान्त-प्रतिपादक के रूप में शैव-समय-परमाचारियर के महत्त्वपूर्ण स्थान हैं। हम यहाँ पर इन्हीं चारों संतों का संक्षिप्त परिचय प्रस्तुत करेंगे।

तिरुज्ञानसम्बन्धर

तिरुज्ञानसम्बन्धर को एक अवतारी पुरुष माना जाता है। तमिलनाडु में जैन मतावलम्बियों के अत्याचारों को समाप्त कर शैवमत और वेदान्त की परम्परा को पुनः प्रतिष्ठित करने तथा तमिल भाषा एंव संस्कृति के पुनरुद्धार के लिये उनका जन्म हुआ था। तमिल के शैवपुराण 'पेरियपुराणम्' के रचयिता चेक्किलार ने पूरे पुराण, जिसमें 63 संतों का चरित्र है, के 4296 पद्यों में से 1256 पद्यों में केवल तिरुज्ञानसंबंधर के जीवन, कृत्यों, धार्मिक संघर्ष और उनके चमत्कारों का विस्तृत वर्णन किया है।

तिरुज्ञानसंबंधर एक अलौकिक प्रतिभासम्पन्न बालक भक्त थे। संगीत, तमिल, संस्कृत, वेदान्त, आगम तथा पुराण का अद्भुत संगम इनके काव्य में विद्यमान है। श्रेष्ठ कवि, दार्शनिक, धार्मिक नेता तथा समाज-सुधारक तिरुज्ञानसंबंधर को शैवभक्तिपरंपरा में विशेष स्थान प्राप्त है। 'सौन्दर्यलहरी' में शंकराचार्य ने 'द्रविड़शिशु' के रूप में उनकी चर्चा की है-

तव स्तन्यं मन्ये धरणिधरकन्ये हृदयतः
पयः पारावारः परिवहति सारस्वतमिव।
दयावत्या दत्तं द्रमिलशिशुरास्वाद्य तव यत्
कवीनां प्रौढानामजनि कमनीयः कवयिता।।

इनका जन्म लगभग सन् 639 ईस्वी में तमिलनाडु में चिदम्बरम् के निकट 'सीरकालि' में ऋग्वेदी ब्राह्मण-दम्पति शिवपादहृदयर् एवं भगवती के घर हुआ था। उनका नाम 'आकुडि पिल्लै' रखा गया। इन्होंने तीन वर्ष की आयु में तिरुत्तोणि के शिव-मन्दिर के सरोवर के तट पर भगवान् शिव का दर्शन किया था। जब इनके पिता सरोवर में स्नान के लिये गये तब वे रोने लगे। कहा जाता है कि उस समय भगवान् शंकर के आग्रह पर उमा ने उस बालक को दुग्धपान करवाया। यह दुग्धपान मानो ज्ञानामृत का पान था। बालक के मुँह पर दूध के छींटे तथा सोने की कटोरी देखकर पिता ने पूछा-'वत्स, तुझे दूध किसने दिया?' वेदों के लिये अज्ञात उस परमतत्व की ओर (अर्थात् आकाश की ओर) अपनी नन्हीं अंगुली से संकेत करते हुए बालक संबंधर ने कहा-'देखिये, उन्होंने।' फिर बालक के मुख से(तमिल भाषा में) काव्यमय गीत की धारा फूट पड़ी, जिसमें शिव एवं पार्वती की अपार अनुकम्पा का विशद वर्णन था। पद के कुछ अंशों का भाव इस प्रकार है '.....कानों में आभूषण धारण करनेवाला, वृषभ को वाहन के रूप में धारण करनेवाला, अपने विशाल मस्तक पर द्वितीया के चन्द्र को धारण करनेवाला, अपने अंगों में श्मशानभूमि की भस्म को लगानेवाला ही मेरा चित्तचोर हैं.....।' इस घटना के अनन्तर उनका नाम तिरुज्ञानसम्बन्धर हो गया।

पाँच वर्ष की अवस्था में अपने यज्ञोपवीत-संस्कार के अवसर पर उपदेश देने के लिये आये आचार्यों के वेद-वेदान्त विषयक संशयों का निवारण करके उन्होंने सबको चकित कर दिया। ऐसे अद्भुत बालक को पिता अपने कंधे पर लेकर प्रमुख मंदिरों में दर्शन के लिये ले जाते, जहाँ सम्बन्धर भगवान् की स्तुति में स्वरचित सुन्दर पदों का गायन करते। संबंधर इतने छोटे थे कि उनके लिये पैदल चलना सम्भव न था। देवी उमा ने इन्हें बाल्यावस्था में दूध पिलाया था इसलिये भगवान् शिव ने इन्हें अपना पुत्र मानकर सवारी के लिये मोतियों की पालकी, पहनने के लिये मोतियों का हार, और विश्राम के लिये मुक्ता-मण्डप आदि प्रदान किया।

संबंधर को मोतियों की पालकी मिलने की कथा इस प्रकार है। एक दिन संबंधर को किसी दूर के एक मंदिर में बुलाया गया। उनके पिता उन्हें कन्धे पर बैठाकर ले जा रहे थे। परन्तु उन्होंने कहा - 'पिताजी! मैं भी पैदल चलूँगा, जैसे आप और अन्य सभी भक्त चल रहे हैं।' संबंधर नंगे पैर जमीन पर चलने लगे। अचानक उक्त मंदिर के पुजारी को लगा, शिव की मूर्ति हिल रही है। डर के मारे पुजारी ने हाथ जोड़ लिये। तभी उसे आवाज सुनायी दी- 'मेरा प्रिय भक्त मेरे दर्शन के लिये नंगे पैर आ रहा है। उसके पैर में अभी-अभी काँटा चुभा है। जाओ, उसे मोतियों के पर्देवाली पालकी में बैठाकर ले आओ।'

'परन्तु प्रभो! कहाँ से आयेगी ऐसी पालकी?' - पुजारी ने पूछा। उत्तर मिला- 'मंदिर के भीतरी प्रकोष्ठ को खोलकर देखो। वहीं है पालकी।'

मंदिर के पुजारी ने दौड़कर भीतर की कोठरी का ताला खोला। सचमुच वहाँ मोतियों के पर्देवाली

पालकी थी। सैकड़ों लोग वहाँ इकट्ठे हो गये। संबंधर को उस पालकी में बिठाकर लाया गया। पीछे-पीछे लोग चँवर डुला रहे थे। ढोल, झाँझ और मजीरों से कीर्तन हो रहा था और उनकी पालकी आगे-आगे चल रही थी।

ज्ञानसम्बन्धर का सम्पूर्ण जीवन विभिन्न शिवस्थलों, मंदिरों तथा तीर्थों आदि की यात्रा में बीता। पेरियपुराण के अनुसार उनका लक्ष्य शिव-आराधना था। अपने पिता की शिवभक्ति के परिणामस्वरूप वे अवताररूप में पैदा हुए थे। उनका लक्ष्य था शैवधर्म को पुनः प्राचीन सम्मान एवं गौरव उपलब्ध करवाना। पाण्ड्य राज्य द्वारा पोषित धर्मान्ध जैनियों को उन्होंने चुनौती देकर शैवमत के प्रभुत्व को स्थापित किया।

ज्ञानसम्बन्धर के जीवन की अनेक अलौकिक घटनाओं अथवा चमत्कारिक कृत्यों का वर्णन 'पेरियपुराणम्' में मिलता है। शैवभक्त पूर्ण निष्ठा एवं सम्मान के साथ इस ज्ञानी, संत-भक्त के कृत्यों का स्मरण करते हैं। छोटी आयु में ही मंदिर में भाव-विभोर होकर गीत गाते समय पंचाक्षर-मंत्र अंकित तिरुतालम् का उनके हाथों में स्वतः ही आ जाना, कोल्लि मलवन् नामक शिवभक्त राजा की पुत्री को एक ही गीत गाकर भयंकर रोग से मुक्त कर देना, तिरुवावडुतुरै में पिता द्वारा यज्ञ की इच्छा करते ही सम्बन्धर का शिव से गीत गाकर आग्रह करना और तुरंत एक हजार स्वर्णमुद्राओं की थैली उपस्थित हो जाना इसी प्रकार के कुछ चमत्कार हैं। तिरुमरुगल् नामक गाँव में कोई युवती अपने पति के साथ आयी थी। रात के समय सर्पदंश से उसके पति की मृत्यु हो गयी। उसके शोक में व्याकुल युवती के रुदन का स्वर सुनकर सम्बन्धर ने मृत युवक को प्राणदान देने के लिये तिरुमरुगल् के अधीश शिव के लिये 'शडयाय् एनुमाल' नामक गीतों की रचना की और उनसे प्रार्थना की। फलस्वरूप वह वणिक् युवक जीवित हो उठा। पाण्ड्य नरेश नेडुमरन् को भयंकर अग्निदाह-सदृश रोग हुआ जिसे ठीक करने में जैन-साधकों के मन्त्रोपचार आदि निष्फल हुए। तब सम्बन्धर को सादर आमंत्रित किया गया। उन्होंने मदुरै के आलावै नामक शिव-मंदिर की विभूति लगाकर एक पदिकम् का गायन किया तो रोग पूर्णतः ठीक हो गया। पाण्ड्य नरेश के समक्ष जैन मतावलम्बियों को शास्त्रार्थ में पराजित कर शैव-धर्म का स्थान राज्य में सुनिश्चित कर दिया। शिवभक्त शिवनेसर नामक वणिक् की एकमात्र कन्या पूम्पावै की सर्पदंश से मृत्यु हो गयी। उन्होंने समुद्र तटवर्ती मद्रास के कपालीश्वर मंदिर में गीत गाकर उस मृत-युवती में प्राणों का संचार कर दिया। तिरुवोत्तूर नामक स्थल में जैनियों की आलोचना का उत्तर देने के लिये उन्होंने एक शिवभक्त के ताड़ के नरवृक्षों को फलयुक्त मादावृक्षों में परिवर्तित कर दिया। उपर्युक्त सभी चमत्कारों के अलावा कई अन्य का विस्तृत वर्णन पेरियपुराणम् में मिलता है।

सीरकाली में रहते समय सम्बन्धर की भेंट प्रख्यात शैवसंत तिरुनावुक्करसर* (अप्पर) से हुई। वे आयु में इनसे काफी बड़े थे। दोनों में इतना स्नेह हो गया कि उसके बाद दोनों साथ-साथ ही तीर्थ-यात्रा पर जाने लगे और विभिन्न मंदिरों में पदों का गायन भी साथ-साथ करने लगे। अनेक मंदिरों में घूमते हुए सम्बन्धर और अप्पर वेदारण्यम् पहुँचे। वहाँ मंदिर का मुख्य द्वार बंद था। उसपर बड़ा-सा ताला लटक रहा था। उन लोगों ने मंदिर के पट नहीं खुलने का कारण जानना चाहा। तब एक बूढ़े व्यक्ति ने बताया-'मंदिर का यह पट नहीं खुलेगा। आप चाहें तो पीछेवाली खिड़की से भीतर जा सकते हैं।' 'लेकिन ऐसा क्यों?'-पूछने पर उसी बूढ़े ने बताया-कहा जाता है कि 'एक बार देवता इस मंदिर में पूजा करने आये थे। पूजा करने के बाद वे मंदिर के पट बन्द करके चले गये। तभी से यह मुख्य दरवाजा नहीं खुला।'

ज्ञानसंबंधर ने अप्पर से कहा-'मेरी इच्छा है, मुख्य द्वार से ही भीतर जाकर पूजा करूँ। आप शिवजी की स्तुति कीजिये, दरवाजा खुल जायगा।' अप्पर ने मुसकराकर कहा-'ठीक है, लेकिन दरवाजा फिर से बंद करने के लिये आपको भक्तिगीत सुनाना होगा।' संबंधर ने भी मुसकराकर कहा-'स्वीकार है।' अप्पर के भक्तिपूर्ण गीतों के प्रभाव से मंदिर के द्वार खुल गये। आसपास खड़े लोगों ने यह चमत्कार देखा तो जय-जयकार कर उठे। इसके बाद सभी ने मन्दिर में जाकर पूजा की, पूजा करके वे बाहर आ गये। संबंधर ने अपना भक्तिगीत सुनाया। सबके देखते-देखते मन्दिर के कपाट फिर बन्द हो गये।

जब दोनों संत वेदारण्यम् में प्रवास कर रहे थे तो जैन-धर्म से प्रभावित पाण्ड्य देश के दूत वहाँ आये। उन्होंने सम्बन्धर से प्रार्थना की कि वे शैवधर्म की पुनः स्थापना के लिये पाण्ड्य देश चलें। अप्पर नहीं चाहते थे कि ऐसे कलहपूर्ण वातावरण में सम्बन्धर पाण्ड्य क्षेत्र में जायँ। परन्तु सम्बन्धर ने यह कहकर उन्हें संतुष्ट किया कि भगवान् शिव के भक्तों का कोई कुछ भी नहीं बिगाड़ सकता और वे पाण्ड्यराजधानी मदुरै पहुँचे।

तिरुवीलिमिललई नामक स्थल पर एक घटना घटी। इस स्थल पर भयंकर अकाल फैला हुआ था। अन्न और जल दोनों का अत्यधिक अभाव था। पेरियपुराण के अनुसार रात्रि में अनादि प्रभु के चरण-कमलों की वंदना के उपरान्त वे सोये तो उन्हें भगवान् शिव ने स्वप्न में दर्शन दे उन्हें मंदिर के पूजास्थल पर प्रतिदिन एक स्वर्णमुद्रा देने का वचन दे गये। जागने के उपरान्त अप्परसहित वे उस स्थल पर पहुँचे और प्रभुकृपा से दोनों भक्तों को एक-एक स्वर्णमुद्रा प्राप्त हुई। अत्यन्त भक्ति और विनयभाव से नतमस्तक हो दोनों भक्तों ने प्रभु का आभार माना और अकाल समाप्त होनेतक सहस्त्रों लोगों के लिये उपयुक्त भोजन की व्यवस्था की।

---

* 'अप्पर' की कथा आगे लिखी जायगी।

माता-पिता के आग्रह पर 16 वर्ष की आयु में (अनुमानत: 655 ई0 में) संबंधर का विवाह निश्चित किया गया। भगवान् शिव एवं भक्तों के प्रिय संबंधर के विवाह के अवसर पर दूर एवं निकट के शिवभक्त एकत्र हुए। तिरुनल्लूर, जो आजकल आच्चालपुरम् कहलाता है, में विवाह सम्पन्न होना था। अग्नि की परिक्रमा से पूर्व उन्होंने 'कल्लूर पेरुमाणम्' नामक पदिकम् का गायन किया जिसमें उन्होंने प्रार्थना की-'प्रभो! अब मुझे अपने चरणों में स्थान दीजिये....।' जब अपनी पत्नी के साथ सम्बन्धर अग्नि की परिक्रमा के लिये उद्यत हुए तभी एक चमत्कार हुआ। आकाश से एक प्रकार की किरणें धरती पर आयीं। फिर वे फैलने लगीं। देखते-देखते वह प्रकाशपुञ्ज चारों ओर छा गया। फिर उसमें एक द्वार दिखायी दिया। इतने में आकाशवाणी हुई-'संबंधर! तुम्हारे लिये मुक्ति का द्वार खुल गया है। तुम जिन्हें भी चाहो, साथ- साथ शिवलोक में ला सकते हो।' तदनन्तर उस ज्योति में विवाह के लिये समागत भक्तों और नववधूसहित सम्बन्धर लीन हो गये।

अपनी इस अल्पायु में उन्होंने 16 हजार पदों की रचना की परन्तु उनमें से अब केवल 383 पदिकम् ही उपलब्ध हैं जिनमें कुल 4181 पद हैं। ये पद संगीत के स्वरों में ढले हैं। डॉ. रामकृष्ण गोपाल भण्डारकर के अनुसार तिरुज्ञान की स्तुतियाँ बड़ी मधुर तथा निर्मल भक्तिभाव से ओत-प्रोत हैं। मूलत: इन स्तुतियों को तमिल रागों में गाया जाता था परन्तु आगे चलकर उत्तर-भारतीय नामों के साथ उत्तर-भारतीय रागों में भी गाया जाने लगा। दक्षिण के प्रत्येक शिवमंदिर में पूजा के लिये सम्बन्धर की प्रतिमा स्थापित की जाती है। अनेक तमिलकवि एवं दार्शनिकों ने अपनी कृतियों के प्रारंभ में उनकी वंदना की है।

संबंधर के विचार

इनके अनुसार शिव ही आदि हैं, शिव ही मध्य हैं और शिव ही अंत हैं; सृष्टि का आरंभ अथवा स्त्रष्टा, मध्य अथवा पालक और अंत अर्थात् संहारक-यह तीनों ही वही ब्रह्म तत्त्व है जिसे शिव कहा जाता है। अर्थात् त्रिमूर्ति ब्रह्मा, विष्णु एवं रुद्र-तीन प्रकार के कार्य करनेवाले एक ही शिव के रूप हैं। अत: ये तीनों ही ईश्वर हैं। सम्बन्धर ने भगवान् शिव का वर्णन वेद के पुरुषसूक्त तथा भगवद्गीता के विश्वरूप के समान किया है। उदाहरण के लिये शिव को सहस्त्रबाहु तथा सहस्त्राक्ष कहा है। संबंधर के अनुसार शिव का एक रूप परमतत्त्व है तो दूसरा रूप निम्न, प्रतीक और पौराणिक घटनाओं द्वारा अभिव्यक्त होता है। उन्होंने शिव से संबंधित पुराणों की अनेक घटनाओं से जुड़ी उनकी वीरता, कृपा तथा शक्ति आदि जैसे गुणों का गान किया है। उन्होंने शिव के आठ कृत्यों -अंधकासुर का विनाश, काम-दहन, काल को लात मारना, जालंधर-वध, दक्ष एवं उसके यज्ञ का विनाश, त्रिपुर का विनाश, ब्रह्मा का शीश काटना तथा गजासुर का संहार करना-का अपनी कविताओं में वर्णन किया है। इन कथाओं से जुड़ी अन्तर्कथाओं का लक्ष्य शिव की भक्ति के साथ-साथ ब्रह्मा और विष्णु की तुलना में शिव की श्रेष्ठता प्रतिपादित

करना भी है।

शैव-सिद्धान्त के ग्रन्थों में सम्बन्धर के कथनों को मात्र उद्धृत ही नहीं किया जाता है, अपितु उन्हें शास्त्र की तरह प्रामाणिक माना जाता है। संबंधर परमेश्वर के सृष्टि, स्थिति, संहार, तिरोभाव तथा अनुग्रहरूपी कृत्यों को शिव की कृपा का परिणाम मानते हैं। उनके गीतों में शिव का परमतत्त्व के रूप में वर्णन प्राप्त होता है। ब्रह्मा एवं विष्णु भी जिन्हें पाने में असमर्थ हैं ऐसे परम शिव की उन्होंने अपने गीतों में स्तुति की है। उन्होंने भक्ति में जातिभेद* को भी अस्वीकार किया है। इसका उदाहरण यह है कि सम्बन्धर के साथ याल(वीणा) बजानेवाला नीलकण्ठ पेरुम्पाणार निम्न जाति का था। मानव की सेवा करना भी शिव-भक्ति का एक पक्ष उन्होंने स्वीकार किया है। सम्बन्धर ने काम, क्रोध, मद, लोभ और मात्सर्य को आत्मा के आध्यात्मिक विकास में बाधा माना है। पंचेन्द्रिय के नियन्त्रण द्वारा इनको वश में कर पाना संभव नहीं है। केवल प्रभु-प्रेम ही अन्तःकरण में व्याप्त होकर इनको जीत सकता है। तदुपरान्त ज्ञान का प्रकाश उदित होकर शिव के सामीप्य की अनुभुति कराता है।

'समय-कुरवर' अर्थात् शिव-भक्ति के चार प्रमुख कवि संबंधर, अप्पर, सुन्दरर एवं माणिक्कवाचकर- सभी ने **'नमः शिवाय'** पंचाक्षर मन्त्र के महत्त्व का वर्णन किया है। इसके लिये कम से कम एक पदिकम् उनके काव्य में अवश्य ही पाया जाता है। जीवन के उस अंतिम समय में जब वे विवाह-मण्डप में थे, तथा आयु मात्र 16 वर्ष थी, संबंधर ने गाया- "प्रेम से भरे हृदय से, प्रभु स्नेह के लिये अश्रुयुक्त नेत्रोंवाले भक्त जब **'नमः शिवाय'** का जप करते हैं तो सत्य-मार्ग प्रशस्त हो जाता है; चारों वेदों का सार-तत्त्व प्रभु का नाम **'नमः शिवाय'** है, ... मंदराचल पर्वत के समान विशाल पाप-कर्मों से युक्त इसका जप करे तो कर्म-बन्धन से मुक्ति होगी.. .....कमलासीन ब्रह्मा ने इस **'नमः शिवाय'** का गायन किया; ब्रह्मा और कमलनयन (विष्णु) जब उनका आदि-अन्त न पा सके तो इसी मन्त्र का गान किया। जिसके कण्ठ में विष स्थित है, जो उन्होंने देवताओं की प्रार्थना पर अमृत-सम पान किया था वे **'नमः शिवाय'** हैं। इस **'नमः शिवाय'** मंत्र के स्थूल और सूक्ष्म आदि अनेक रूप हैं।"

तिरुनावुक्करसर (अप्पर व वागीश)

तिरुनावुक्करसर (तिरुनावुक्करसु) अथवा अप्पर (जिनका समय 570 ई0 से 661 ई० के बीच माना जाता है) तिरुमुनैपाडी के समीप पेण्णै नदी के किनारे स्थित तिरुवारूर (तिरुवाय्मूर)नामक रमणीक क्षेत्र में एक कृषक परिवार में पैदा हुए थे। इनके पिता का नाम पुगलनार तथा इनकी

---

* तुलना करें- **'नास्ति तेषु जातिविद्यारूपकुलधनक्रियादि भेदः।'** (नारदभक्तिसूत्र 72)
अर्थात्-'भक्तों में जाति, विद्या, रूप, कुल, धन और क्रियादि का भेद नहीं होता है।'

बड़ी बहन का नाम तिलकवती था। इनके पिता धन-धान्य से समृद्ध थे। बचपन में इनके पिता ने इनका नाम रखा मरुल्नीक्कि (मरुल्=अज्ञान, नीक्कि=दूर करनेवाला)। इन्होंने विविध प्रकार की कलाओं का ज्ञान अर्जित किया। जनकल्याण के कार्यों में उनकी विशेष रुचि थी। तालाब खुदवाने, सड़कें बनवाने, पथिकों को पानी पिलाने की व्यवस्था करने आदि में उन्हें आनंद मिलता था। पर न जाने क्यों उनका मन अशान्त रहता था। बहन तिलकवती की सगाई सेनापति कलिप्पकैयनार् से हुई थी। परन्तु विवाह से पूर्व ही युद्धक्षेत्र में उसकी मृत्यु हो गयी। तिलकवती ने आजीवन वैध व्य का व्रत स्वीकार किया। कुछ समय बाद भाई-बहन के सिर से माता-पिता की छत्र-छाया भी उठ गयी। विधवा होने के बाद तिलकवती शिव-भक्ति में पूर्णतया लीन हो गयी।

विविध कलाओं के ज्ञान से युक्त होने पर भी युवा मरुल्नीक्कियार को विचित्र अशान्ति का अनुभव होता। अत: मानसिक शान्ति की खोज में वे जैन-धर्म में दीक्षित हो गये और वे जैनमठ में रहने लगे। पाटलिपुत्तिरम् (तिरुप्पातिरिप्पुलियूर) के जैनमठ के अधीक्षक के रूप में इनका नाम तरुमचेनर् (धर्मसेन) हुआ। दक्षिणभारतीय अभिलेखों के आधार पर इनका एक नाम वागीशर (वागीश) प्रसिद्ध है। श्रेष्ठ तार्किक तथा पाण्डित्ययुक्त होने के कारण जैन-धर्म में दीक्षित होने के बाद धर्मसेन नाम से इन्होंने विभिन्न स्थानों का भ्रमण करते हुए जैनमत का प्रचार किया।

छोटे भाई के धर्मान्तरण से दु:खी तिलकवती भगवान् शिव से इसकी शिकायत करती और मंदिर की सेवा में पूरी तरह मग्न रहती। एक बार अप्पर को असह्य उदर-पीड़ा हुई। जैन साधुओं के मंत्रोपचार तथा औषधि आदि से भी रोग की यन्त्रणा कम न हुई। अप्पर ने अपनी बहन को बुलवा भेजा। पर शैव-धर्म से विमुख अपने भाई अप्पर से उसने मिलने आने से इन्कार कर दिया। तब अप्पर ने जैन वस्त्रादि उतारकर एक रात्रि को श्वेत वस्त्र धारणकर तिरुवदिकै नामक स्थल पर अपनी बहन तिलकवती की शरण ग्रहण की। उस समय उनकी आयु लगभग 45 वर्ष की थी। तिलकवती अप्पर को आदिकै (तिरुवदिगै) के वीरट्टानम् मंदिर में ले गयी। उस मंदिर में तिलकवती ने भगवान् शिव की विभूति लेकर भाई के रोगमुक्ति हेतु प्रार्थना की। वहाँ अप्पर ने भी अपनी असह्य उदरपीड़ा से मुक्ति की प्रार्थना की। निराशा, मानसिक एवं शारीरिक पीड़ा से मुक्ति की अप्पर द्वारा की गयी प्रार्थना निष्फल नहीं हुई। इस घटना के साथ ही धर्मसेन शिव-कृपा में अवगाहन करने लगे। उन्हें एक अलौकिक आनंद के साथ ही आकाशवाणी कि 'तुम्हारी वाणी में सरस्वती बसेंगी' सुनायी दी और उनका नाम 'तिरुनावुक्करसर' (तिरु=आदरसूचक=श्री; नावुक्करसर=जिह्वा के अधीश) अर्थात्-माधुर्यपूर्ण सार्थक भक्तिगीतों के गायक 'वागीश' हो गया। बहन के आदेशानुसार वे शरीर से प्रभु की सेवा मन से उनका ध्यान तथा वाणी से उनका गुणगान करने लगे।

धर्मसेन अब जैन धर्मावलम्बियों के संकेत पर अनेकानेक यातनाओं के शिकार होने लगे। जैनमतानुयायी पल्लव नरेश महेन्द्रवर्मन प्रथम ने अप्पर को राजसभा में आने का बुलावा भेजा। तब निर्भिक शिवभक्त अप्पर ने कहा– "हम किसी के दास नहीं, हमें मृत्यु का भी भय नहीं; हम नरक में यन्त्रणा नहीं भोगेंगे, हम किसी से भय नहीं करते। हम प्रसन्न रहेंगे, रोगों से मुक्त हैं, हम शीशा नहीं झुकायेंगे, रोगों को हम नहीं जानते। अनन्त आनन्द हमारा है, दुःख हमारे लिये नहीं।"

जैन–धर्म के प्रमुख लोगों के परामर्श से अप्पर को चूने की भट्टी में डाल दिया गया। प्रभु–प्रेम में डूबे अप्पर ने भगवान् के चरणों की शीतल छाया का गुणगान किया। फलस्वरूप भगवान् के चरण रक्षक बन गये और एक सप्ताहतक चूने की भट्टी में रहने के बावजूद भी अप्पर का कुछ भी नहीं हुआ। तदनन्तर अप्पर को विष दिया गया परन्तु वह भी मीरा के विष के प्याले के समान अमृत हो गया। यह सब देखकर कट्टरपंथी जैन भिक्षुओं ने अप्पर को मदमत्त हाथी तले रौंद देने का परामर्श राजा को दिया। अप्पर ने श्वेत भस्म और चन्दन लेप–युक्त प्रकाशमान चंद्र, मणियुक्त हाथी की खाल को धारण करनेवाले, धर्मरूप वृषभ को वाहन बनानेवाले, अद्वितीय केडिलम् नदी के तट पर प्रतिष्ठित शिव का गायन किया और घोषणा की कि 'ऐसा कुछ नहीं जिससे हम आतंकित हों, भविष्य में भी हमें कोई भयभीत नहीं कर सकता'। मदमत्त हाथी भक्त अप्पर के चरणों में प्रणाम कर, क्रोधपूर्वक जैन भिक्षुओं की ओर घूमा तो वहाँ हाहाकार मच गया।

इस यातना का अन्तिम चरण था एक विशाल चट्टान से बाँधकर सागर के अतल जल में फेंक देना। पर आश्चर्य! अप्पर के गीतों के स्वर के साथ ही वह पत्थर मानो लकड़ी का विशाल स्तम्भ होकर जल में तैरने लगा। वे बहते–बहते तिरुप्पादिरिप्पुलियूर के तट पर आ गये। समुद्र में डुबाने के लिये पत्थर से बँधे अप्पर के गीत गाया–

वह अक्षर है, वह हमारा सहायक है, वह साकार वेद है, वह ज्योतिपुंज है, वह अलौकिक है, उसके स्वर्णिम चरणों को हृदय में धारणकर करबद्ध हो उसकी वंदना करने पर यदि पत्थर से भी बाँधकर किसी को सागर में डाल दिया जाय तो उस समय भी वह सहायक होगा, वही एक **नमः शिवाय**, वही है आश्रय।

अहिंसा में प्रबल विश्वास करनेवाले जैनियों द्वारा अप्पर की हत्या के प्रयासों के पीछे कारण यह था– अप्पर अपने जैन मठाधीश धर्मसेन के रूप में जैनपरम्परा और शास्त्र आदि से पूर्णतः परिचित होकर जब शैव–धर्म में गये तो उनका यह धर्म–परिवर्तन जैनधर्म के प्रचार–प्रसार में भयंकर बाधक तत्त्व बन गया था। यह सत्ता और धार्मिक आधिपत्य का संघर्ष था, सत्य के मार्ग का अनुसंधान नहीं।

अप्पर को इन घटनाओं के बाद भी शैवसमाज में सन्देह की दृष्टि से देखा जाता रहा। तीन शिवमंदिरों में प्रार्थना के बाद तिरुत्तूंगानै-मठम् में वे शिव से याचना करते हैं कि उन्हें त्रिशूल से दागा जाय। शैवभक्तों में शरीर गोदवाने की प्रथा नहीं रही, अत: लोग उन्हें सन्देह से न देखें इसलिये वे त्रिशूल से दागे जाने की प्रार्थना करते हैं। कहा जाता है किसी भक्त ने किसी उत्सव के समय अनायास ही उनके कंधे पर त्रिशूल और नंदी का चिन्ह गोद दिया।

अप्पर के त्याग और यन्त्रणा सहने पर भी अपने शिव की शक्ति में अदम्य विश्वास का परिणाम यह हुआ कि पल्लव-नरेश ने शैव-धर्म में दीक्षा ले ली, पाटलीपुत्र के जैनमठ को समाप्त कर दिया तथा उसी सामग्री से तिरुअदिकै में शिवमंदिर का निर्माण किया। गुणभद्र नाम से प्रसिद्ध महेन्द्र वर्मा द्वारा निर्मित इस मंदिर के अवशेष अब भी मौजूद हैं। अप्पर को इन सब कार्यों में रुचि न थी, वे अपनी धर्मयात्रा पर चलते रहे।

तिंगलूर नामक स्थान पर एक निष्ठावान् ब्राह्मण भक्त अप्पूदि अडिगल् रहते थे। उन्होंने अनेक प्याऊ, सरोवर और उद्यान आदि के नाम तिरुनावुक्करसु के नाम पर रखा था। उनके घर अप्पर मध्याह्न के भोजन पर आमंत्रित थे। उन्हें अति आदर एवं सम्मान के साथ भोजन करवाने की तैयारी चल रही थी कि भोजन परोसने के लिये केले के पत्ते उतारते समय डाल में छिपे एक सर्प ने उनके बालक को काट लिया। बालक ने केले के पत्ते को तो माँतक पहुँचा दिया पर स्वयं सर्प के विष से मूर्च्छित हो गया, देह नीली पड़ गयी। माँ ने ममता के स्थान पर प्रभुभक्त के प्रति अपने दायित्व को प्राथमिकता दी और एक चटाई में शरीर को लपेटकर घर के एक कोने में रख दिया। पति-पत्नी इस दारुण दु:ख को हृदय में ही छिपाकर अप्पर के आतिथ्य-सत्कार में जुट गये। भोजन के लिये बैठते ही अप्पर ने उनके पुत्र के विषय में पूछा। अप्पूदि अडिगल् और उनकी पत्नी को सत्य बताना पड़ा। अप्पर ने उनकी त्याग-भावना, आतिथ्य-सत्कार और अपार निष्ठा की सराहना की। मृत-बालक के शरीर के निकट पहुँचकर उन्होंने भगवान् शिव की महिमा का गुणगान करते हुए दस पदों का गायन किया। गीत मानो गारुड़ी-मन्त्र बन गये, मृत-बालक पुन: जीवित हो उठा। आज भी इन पदों का प्रयोग सर्पदंश के विष को दूर करने के लिये किये जाने का उल्लेख मिलता है। बालक के पुनर्जीवित होने के उपरान्त स्नानादि कर अप्पर तथा परिवार के लोगों ने भोजन किया।

'पेरियपुराण' में अप्पर से संबंधित दूसरे चमत्कार का वर्णन इस प्रकार है। पलयारै नामक स्थान पर जैनियों द्वारा एक शिवमंदिर को दीवार से घेरकर बंद कर दिया गया था। अप्पर ने प्रतिज्ञा की कि जबतक उन्हें मंदिर में प्रतिष्ठित शिव के दर्शन नहीं होंगे वे निराहार रहेंगे और उस स्थान से आगे नहीं बढ़ेंगे। शिवजी ने स्वप्न में नरेश को आदेश दिया कि उन्हें जैन भिक्षुओं द्वारा छिपाये गये स्थल से निकालकर तिरुनावुक्करसु से उनका मिलन करवाया जाय। मन्त्री-परिषद से अपने

स्वप्न के विषय में परामर्श कर नरेश ने उस स्वप्ननिर्दिष्ट स्थान की खोज की, शिवमूर्ति की पुनः स्थापना की और भक्त अप्पर के चरणों की वंदना की। मंदिर की पुनः प्रतिष्ठा करवाने के बाद अप्पर ने विधिवत् शिव-पूजा की और तभी अपना उपवास समाप्त किया। तिरुआणिक्कै आदि शिव-स्थलों के दर्शन करते हुए वे कावेरी के पार गये तथा उनके यात्रा का क्रम चलता रहा।

अप्पर तिरुज्ञानसम्बन्धर के जन्म से लगभग चालीस वर्ष पहले पैदा हुए थे। सीरकालितक आते-आते अप्पर को ज्ञानसम्बन्धर के अद्‌भुत शिव-भक्ति के गीतों का पता चल चुका था। एक ओर से तिरुनावुक्करसु अनेक भक्तोंसहित शिव की पवित्रस्थली पुकालि में पहुँचे और दूसरी ओर भक्तों से घिरे सम्बन्धर भी उनके आगमन की सूचना प्राप्त कर अगवानी के लिये आगे आये। भावविभोर होकर आनन्दातिरेक में तिरुनावुक्करसु ने बालक ज्ञानसंबंधर के चरणों में दण्डवत् किया। बालक भक्त ने अपने कोमल पुष्पसदृश हाथों से उन्हें सादर उठाया और कहा-अप्परे! ओ पिता! अप्पर के मुख से केवल यही निकला-मैं दास हूँ आपका । तदुपरान्त दोनों कई दिन साथ रहे, आपस में धार्मिक चर्चा करते रहे और यात्रायें करते रहे। अप्पर को संबंधर के रूप में शैवधर्म की प्रतिष्ठा की पुनः स्थापना करनेवाली शक्ति का आभास हुआ। कुछ समय बाद अप्पर और संबंधर की तीर्थयात्रा स्वतंत्ररूप से चलती रही। इनका पुनर्मिलन तिरुपुहलूर में हुआ।

तिरुमरैक्काडु (वेदारण्यम्) में एक प्राचीन शिवमंदिर के वर्षों के बंद द्वारों को क्रमशः खोलने और बंद करने के लिये दोनों भक्तों ने एक-एक पदिकम् का गायन किया। अप्पर प्रभु के आदेश से वायूर गये, सम्बन्धर भी उनके पीछे चल दिये। वहाँ दोनों को साक्षात् शिव के दर्शन हुए। तिरुवीलिमिलले में भयंकर अकाल के समय दोनों भक्तों ने शिव-स्तुति द्वारा स्वर्ण मुद्राएँ प्राप्त कीं और पर्याप्त समयतक भोजन और जल की व्यवस्था कर उसका जनता में वितरण किया। उनके अनुसार शिवभक्ति का मार्ग मात्र आध्यात्मिक साधना द्वारा स्वकल्याण ही नहीं अपितु जन-जन की पीड़ा को भी दूर करना है। वहाँ पर दोनों भक्तों ने अपने अलग-अलग मठों में अन्नदान का क्रम तबतक जारी रक्खा जबतक कि अकाल का प्रभाव समाप्त नहीं हो गया।

आध्यात्मिक मार्ग में गुरु द्वारा दीक्षा की प्राचीन परम्परा है। गुरु नेत्रों से कृपादृष्टि डाल दे तो नेत्रदीक्षा, स्पर्श द्वारा शिष्य को ज्ञान दे दे तो स्पर्श-दीक्षा, मंत्र द्वारा ज्ञान दे तो उसे मन्त्र-दीक्षा कहते हैं। परन्तु यदि गुरु अपने चरण शिष्य के सिर पर रखकर दीक्षा दे तो उसे तिरुवडि-दीक्षा कहते हैं। नेल्लोर के शिवमन्दिर में स्वयं साक्षात् शिवजी ने भक्त अप्पर के मस्तक पर अपने चरण कमल का स्पर्श करवाकर उन्हें तिरुवडि दीक्षा दी थी। अप्पर ने वहाँ पर भावविभोर होकर 'नल्लूरवासी प्रभु' के देवताओं पर कृपा करनेवाले, दूज के बाल-चन्द्र को धारण करनेवाले, मदमस्त गजराज की खाल को धारण करनेवाले तथा भक्तों के कर्मों को नष्ट करनेवाले रूप का गायन किया।

जब अप्पर तिरुप्पारई होकर तिरुप्पैंगिलि जा रहे थे तो वे मार्ग में भूख और प्यास से व्याकुल थे। ऐसे समय में भक्त के लिये भगवान् शिव ने माया द्वारा एक कुंज और लघु सरोवर रच दिया और स्वयं ब्राह्मणवेश में आकर उन्हें खाने को स्वादु व्यंजन दिया। भोजन एंव जलपान से तृप्त हुए अप्पर से ब्राह्मण ने पूछा–'भाई! कहाँ जा रहे हो'? अप्पर बोले–'मैं तिरुप्पैंगिलि जा रहा हूँ।' 'मैं भी तो वहीं जा रहा हूँ' कहकर ब्राह्मण अदृश्य हो गया। भाव–विभोर अप्पर ने अनुभव किया कि स्वयं शिव ही उन्हें दर्शन देने आये थे। गद्गद् होकर अवरुद्ध कण्ठ से वे अपने प्रभु के गुणों और उनकी असीम कृपा का गान करने लगे।

अप्पर ने अनेक दुर्गम स्थलों की यात्रा करते हुए मार्मगोवा और मंगलौर के पश्चिम की ओर स्थित गोकरणम् के मंदिर में पहुँच वहाँ के शिवलिंग की पूजा की। 'प्रभु वही रूप धारण कर लेता है जिस रूप में भक्त उसकी पूजा करते हैं'–अप्पर द्वारा इस मूल भावना से युक्त गीत की रचना यहीं हुई। विभिन्न स्थलों को पारकर असहनीय कष्टों को सहते हुए वे वाराणसी होते हुए कैलास पर्वततक जाना चाहते थे। छिली हथेलियाँ, अंग–प्रत्यंग में पीड़ा, पाँव में छाले तथा अस्थि–पंजर शरीर लिये वे आगे बढ़ रहे थे। एक ही लगन, एक ही कामना कि कैलास पर पार्वती के साथ विद्यमान प्रभु शिव के दर्शन प्राप्त करें। बर्फीले प्रदेश में धमनियों में रक्त–प्रवाह रुक जाने से हाथ–पैर सुन्न पड़ गये और वे धरती पर गिर पड़े। फिर भी कैलास–यात्रा का निश्चय नहीं छोड़ा और गिरते–पड़ते कैलास के मार्ग पर अग्रसर हुए। एक शैव–संत के रूप में शिवजी ने प्रकट हो उन्हें वापस जाने को कहा। पर भक्त ने कहा–'यदि मुझे मृत्यु का भी आलिंगन करना पड़े तो भी वापस नहीं जाऊँगा।' शिव अन्तर्धान हो गये और भक्त के शरीर का सम्पूर्ण कष्ट भी दूर हो गया। उसी समय उन्होंने आकाशवाणी सुनी–'इस सरोवर में कूदो, तुम्हें तिरुवैयारु में कैलास और हमारे दर्शन होंगे।' प्रभुआदेश के अनुसार भक्त सामने स्थित तालाब में कूद पड़े। जब डुबकी लेकर बाहर निकले तो आश्चर्यचकित अप्पर ने अपने को दक्षिण के तिरुवैयारु के कुएँ में पाया। वहाँ उन्हें प्रत्येक जीव में शिव एवं शक्ति के दर्शन हुए। हिमाच्छादित कैलास तथा पार्वती के साथ स्वयं शिव वहाँ विराजमान थे। उनका यह शिव–दर्शन अभूतपूर्व था। क्योंकि सर्वत्र प्रभु के दर्शन होने से उन्हें शिव के विश्वरूप का दर्शन हो गया था। इन सब घटनाओं का वर्णन उन्होंने अपने पदों में बड़े अच्छी तरह से किया है।

तिरुत्ततुरैप्पूंडी में अप्पर ने जैनियों के साथ संघर्ष में विजय प्राप्त की तथा ज्ञानसंबंधर के भक्तों की टोली में मिलकर उनकी रत्नजटित पालकी को अपने कंधों से उठाया। उनकी दास–भावना में भक्त एवं भगवान् का अन्तर समाप्त हो गया था। बालक ज्ञानसंबंधर को जैसे ही यह ज्ञात हुआ वे पालकी से कूद पड़े और उनके चरणों में साष्टांग प्रणाम के लिये झुके पर

इससे पहले अप्पर उनके चरणों में दण्वत् कर चुके थे।

इसके बाद अप्पर मदुरै, रामेश्वरम्, तिरुपुगलूर तथा तिरुवारूर गये और पुनः तिरुपुगलूर लौटे। यहाँ अप्पर की परीक्षा हुई। उनके चारों ओर तृष्णा का जाल बुना गया। मंदिरक्षेत्र एवं परिसर के कांटे, व्यर्थ घासें, कंटीली झाड़ियों तथा कंकड़-पत्थर इत्यादि को साफ करने की सेवा का कार्य अप्पर स्वयं करते थे। कंकड़ एवं मिट्टी के ढेलों के साथ मूल्यवान् मणियाँ उनके हाथ में आने लगीं। उनके चारों ओर अप्सरायें मंड़राने लगीं। अप्पर ने स्वर्ण और मणियों को कूड़े के ढेर के साथ ही कुएँ में फेंक दिया करते। सुन्दर अप्सराओं के हाव-भाव का उनके हृदय पर कोई प्रभाव नहीं पड़ा। फलतः वे उन्हें प्रणाम कर वापस चली जातीं।

अप्पर अब अपने शिव के चरणों में जाने को तैयार थे। उन्होंने गीत गाया- "हे प्रभु! आपकी दी हुई यह काया है, जिसके नौ द्वार हैं, यदि ये कपाट एक साथ बंद हो गये तो मैं चरणों के दर्शन कैसे करूँगा? आपके चरणों का ध्यान कैसे करूँगा? अतः हे प्रभु! मैं अभी और यहीं आपके चरणों की शरण में आता हूँ। हे पूम्पुहलूर में प्रतिष्ठित प्रभु! मैं तुम्हारे चरणों में आ रहा हूँ।"

इस भाव का गीत गाकर उन्होंने अपना शरीर छोड़ दिया। उस समय उनकी आयु लगभग 81 वर्ष की थी। इनका जीवन बड़ा सरल था। कौपीनमात्र इनकी सम्पति थी। हाथ में एक झाड़ू और लम्बी खुरपी लिये रहते और मंदिरों की सफाई किया करते थे। सदैव नंगे पाँव ही चलते। वे बालक के समान सरल तथा सैनिक की भाँति दृढ़प्रतिज्ञ थे।

अप्पर के विचार

अपने दीर्घ जीवनकाल में अप्पर ने 125 शिव-आराधना के स्थलों पर आराधना के सहस्त्रों पद रचे। इनमें से अब केवल 3068 पद जो 312 दशकों में हैं, तीन तिरुमुरै ग्रंथों में संगृहीत हैं। अप्पर सेवा-भावना को विशेष महत्त्व देते थे। उनके जीवन का लक्ष्य सेवा था। अपनी समृद्धि के दिनों में उन्होंने कुएं एवं तालाब खुदवाये, प्याऊ स्थापित किये। धर्मशालायें बनवायीं। निर्धन ज्ञानी लोगों को यथासंभव सहायता दी तथा मंदिरों और निकटवर्ती क्षेत्र की सफाई की समुचित व्यवस्था की।

साधना के लिये उन्होंने दैन्य भाव स्वीकार किया था। अप्पर ने शैव-सिद्धान्त की इस मान्यता को अपने गीतों में स्वीकृति दी कि शिव के भक्तों की पूजा शिव के समान ही होनी चाहिये। भक्ति के मार्ग में पंथ, जाति, धर्म, भाषा तथा लिंग के आधार पर भेद का कोई स्थान नहीं है। अपने इन भावों को अप्पर ने गीतों में उभारा है। अप्पर अपने को भगवान् का दास मानकर दैन्य-भक्ति का अनुमोदन करते हैं। ज्ञानी भक्तों के लिये अप्पर कहते हैं-मस्तिष्करूपी दीपक में ध्यान का घृत डालकर प्राणतत्त्व की वर्तिका को अपने शरीरगृह में जलाओ। उस ज्ञान के प्रकाश

में पिता (शिव) के दर्शन होंगे। अन्यत्र वे कहते हैं कि-सत्य का हल चलाओ, ज्ञान-कामना का बीज बोकर आत्म-चिंतन द्वारा इसका ध्यान करो, सद्कार्यों की बाढ़ लगाओ, ऐसा करने पर 'शिव-गति' का तुरन्त विकास होगा।

अप्पर ने अपने गीतों में अनेक प्रकार के शैव-सिद्धान्तों को अभिव्यक्त किया है। उदाहरण के लिये शैव-सिद्धान्तदर्शन में स्वीकृत 96 तत्त्वों का उल्लेख अप्पर ने अनेक पदिकमों में किया है। 24 आत्मतत्त्व (पंचभूत, पंचतन्मात्रा, पंचज्ञानेन्द्रिय, पाँच कर्मेन्द्रिय एवं मन, बुद्धि, चित्त और अहंकार), 10 नाड़ी, 5 अवस्थायें, 3 मल, 3 गुण, 3 मण्डल, (सूर्य, चन्द्र एवं अग्नि), 3 दोष, अष्टविकार, (काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, मात्सर्य, दम्भ और असूया), 6 आधारधातु, 10 वायु, 5 कोष, 9 द्वार का वर्णन अप्पर ने किया है। इसके अलावा उन्होंने पंचकंचुकों तथा नियति, काल, कला, राग एवं विद्या, जो शरीर में प्रवेश कर शरीर के 96 तत्त्वों को उद्वेलित करते हैं, का वर्णन किया है। शिव की अष्टमूर्ति, पंचाक्षरमन्त्र एवं शिवनाम की महिमा आदि का वर्णन उन्होंने अपने काव्य में किया है।

सुन्दरमूर्ति स्वामीगल्

सुन्दरर के विषय में पेरियपुराणम् के रचयिता चेक्किलार ने समग्र 4281 पदों में से 844 पदों में वर्णन किया है। इतना विस्तृत वर्णन एंव विवेचन तिरुज्ञानसम्बन्धर के अतिरिक्त किसी अन्य कवि का पेरियपुराणम् में नहीं हुआ है।

तमिलनाडु में पेन्नै नदी के दक्षिण तट पर स्थित (अप्पर जिस तिरुमुनैपाडी क्षेत्र में अवतरित हुए थे उस पावन क्षेत्र के) तिरुनावलूर में शैव-ब्राह्मण परिवार में जन्मे नम्बिआरूरर सुन्दरमूर्ति नायनार् के पिता का नाम चडैयनार और माता का नाम इशैज्ञानियर था। बचपन में ही बालक के सौन्दर्य और गुणों से प्रभावित होकर तिरुमुनैप्पाडि-नाडु के राजा नरसिंह मुनैयारैयर ने बालक के माता-पिता की अनुमति से राजभवन में अपने पुत्र के समान रखकर इन्हें वेद और आगम ग्रन्थों की शिक्षा देने की व्यवस्था की। सम्भवत: अपने सुन्दर रूप के कारण ये सुन्दरर नाम से प्रसिद्ध हुए। इनका काल 7वीं-8वीं शती माना जाता है।

इनके जीवन का काया-कल्प एक विशेष घटना से हुआ। सुन्दरर जब विवाहयोग्य हो गये तो पुत्तूर के एक शैव-ब्राह्मण कवि शिवचारियर की कन्या के साथ उनका विवाह निश्चित हुआ। विवाह-मण्डप में सजकर बैठे हुए सुन्दरर के समक्ष एक वृद्ध ब्राह्मण आये। उज्ज्वल मस्तक पर श्वेत भस्म, घने श्वेत केश, रुद्राक्ष धारण किये इस ब्राह्मण ने घोषणा कि-यह सुन्दरर मेरा दास है अत: इसे मेरी सेवा करनी चाहिये। जनसमुदाय और सुन्दरर सभी आश्चर्यचकित रह गये। सुन्दरर बोले-यह कैसे सम्भव है कि एक ब्राह्मण दूसरे ब्राह्मण का दास हो? आगन्तुक वृद्ध ने प्रमाण

के रूप में एक ताड़पत्र दिखाया। सुन्दरर ने आक्रोश में उसे फाड़कर फेंक दिया। विवाद के उग्ररूप धारण कर लेने पर सभी लोग तिरुवेण्णैनल्लूर स्थित वाद-विवाद मण्डप में गये। वृद्ध ब्राह्मण ने स्थानीय विद्वानों की मण्डली के समक्ष अपना प्रमाण प्रस्तुत किया। इस ताड़पत्र पर सुन्दरर के पूर्वजों द्वारा लिखा गया था-'हम और हमारी संतति इस वृद्ध की दासता स्वीकार करते हैं।' अतः पंचों ने वृद्ध के पक्ष में मत दिया। यह पूछे जाने पर कि उनका निवासस्थान कहाँ है वे शिवमंदिर की ओर चल दिये। मंदिर में प्रवेश करते-करते ही वे अन्तर्धान हो गये। उसी क्षण नम्बि-आरूरर-सुन्दरर को ज्ञान का प्रकाश हुआ। वे समझ गये कि वृद्ध और कोई नहीं स्वयं भगवान् शिव थे।

सुन्दरर ने दो विवाह किये। पत्नियों के नाम क्रमशः परवैयार तथा सांगिलियार थे। सुन्दरर को 14 वर्ष की आयु में ज्ञान प्राप्त हुआ। इसके बाद केवल चार वर्ष की अवधि में उन्होंने 79 तीर्थ-स्थलों और शिवमंदिरों में शिव-स्तुति के पदों की रचना की और अनेक चमत्कारिक कार्य किये। पौराणिक कथन के अनुसार सुन्दरर को इस जन्म में ही सारूप्य-मुक्ति प्राप्त हो गयी थी और वे जीवनमुक्त थे। जीवनमुक्त के लिये सामाजिक परिवेश तथा नियम आदि का अर्थ समाप्त हो जाता है। फिर भी शरीरधारी होने के नाते जीवनमुक्त भी समाज के अनुसार ही जीता रहता है, यद्यपि उसके सभी कार्य-कलाप ईश्वर प्रेरित होते हैं। सुन्दरर के जीवन की कुछ घटनाओं से यह बात स्पष्ट हो जाती है।

तिल्लै(आधुनिक चिदम्बरम्) में शिव के सृष्टि-नृत्य को देखने की मनोकामना से सुन्दरर तिरुवदिकै पहुँचे और सिद्धवटमठ में अपने साथियोंसहित विश्राम कर रहे थे। एक वृद्ध ब्राह्मण ने सोने का उपक्रम करते हुए अपने चरण सुन्दरर के सिर पर रख दिये। सुन्दरर ने उनसे कहा-'हे ब्राह्मण! आपने अपने पाँव मेरे सिर पर रखे हैं।' ब्राह्मण ने सादर कहा-'मुझे दिशा का ज्ञान नहीं, वृद्ध हूँ, क्या करूँ?' सुन्दरर एक अन्य स्थल पर जाकर सो गये पर चरण वहाँ भी उनके सिर पर थे। तब वे पूछ ही बैठे-कौन हो तुम? यह सब क्या है? इस पर वे वृद्ध तत्काल लुप्त हो गये, वहाँ केवल यह स्वर सुनायी पड़ा-'क्या अब भी नहीं पहचाना?' इस घटना को चेक्किलार ने पेरियपुराण में सुन्दरर की 'तिरुवडिदीक्षा' और गुरुरूपी शिव द्वारा उन्हें अपने भक्तों में समाविष्ट करना माना है। सुन्दरर ने इस घटना का उल्लेख विस्तार से एक गीत में किया है। चिदम्बरम् में नटराज की स्तुति करते समय वे समाधिस्थ हो गये और उनके अन्तःकरण में एक स्वर सुनायी दिया जिसके द्वारा उन्हें तिरुवारूर जाने का आदेश मिला। फलस्वरूप सुन्दरर तिरुवारूर पहुँचे।

तिरुवारूर में त्यागेश के मंदिर में उन्हें परवैयार नामक कन्या दिखायी दी। वे उसके सौन्दर्य से अभिभूत हो गये। परवैयार रुद्रगणिका(देवदासी) वंश की अपार सौन्दर्य और गुणों से युक्त कन्या थी। इधर शिव ने आरूर(तिरुवारूर) के भक्तों को स्वप्न में दर्शन देकर सुन्दरर और परवैयार के

विवाह की व्यवस्था का आदेश दिया। तदनन्तर दोनों ने आनन्दपूर्वक पारिवारिक जीवन व्यतीत करना प्रारम्भ किया।

तिरुवारूर के प्रवासकाल में नम्बि आरुरर प्रतिदिन मंदिर में बल्मीकनाथ शिवजी के दर्शन के लिये जाया करते थे। मंदिर में प्रवेश करते ही वे द्वार से थोड़ी दूर बने देवाचार्य मण्डप में रहनेवाले भक्तों की वंदना किये बिना अन्दर चले जा रहे थे। वहाँ बैठे विरन्मिण्डर नामक भक्त ने जब यह देखा तो घोषणा की–'देवाचार्य मण्डप में निवास करनेवाले शिवभक्तों की वंदना किये बिना, उनकी अवहेलना करनेवाले भक्त नम्बि आरूरर का मैं बहिष्कार करता हूँ और ऐसे भक्त को अपना दास बनाने के लिये ग्रामसभा में वाद करनेवाले भगवान् का भी मैं बहिष्कार करता हूँ।' वास्तव में सुन्दरर स्वयं को प्रभु के दासों के चरणों के योग्य भी नहीं समझते थे। पर यह घोषणा सुनकर भक्तों के प्रति बार–बार दण्डवत् प्रणाम करने के बाद उन्होंने 'तिरुत्तोण्डतोगै' (भगवान् के भक्तों की मण्डली) का स्तुति–गान किया जो इस पंक्ति से प्रारंभ होता है–'मैं तिल्लै (चिदम्बरम्) के निवासी भक्तों के दास का भी दास हूँ।' इस स्तुतिगान में प्राचीन काल के और अपने युग के 60 प्रभुभक्तों का नाम–गुणसहित गायन कर उन्होंने रेखांकित किया कि 'मैं सभी भक्तों का दासानुदास हूँ।'

दक्षिण भारत के पश्चिमी क्षेत्र को उस युग में चेरनाडु (चेर–प्रदेश) कहते थे। उस प्रदेश की राजधानी 'महोदै' थी। चेरमान् पेरुमाल् नामक शिवभक्त नरेश प्रतिदिन शिव की पूजा करता तो पूजा के अन्त में उसे चिदम्बरम् के नटराज के शिलम्बु (घुंघरुओं) का स्वर सुनायी देता था। एक दिन वह स्वर न सुनायी देने पर वह व्याकुल हो गया। उसके मन की दुविधा को दूर करने के लिये उसे शिव का स्वर सुनायी दिया–हे राजन्! दुःखी मत हो! मेरे समक्ष मेरा प्रिय भक्त सुन्दरर मधुर गीत गा रहा था, मैं उसके गीतों के माधुर्य में डूबा हुआ था। अतः देरी हुई। यह सुनकर चेरमान् पेरुमाल् नटराज एवं भक्त सुन्दरर के दर्शन के लिये चिदम्बरम् गया। वहाँ वह सुन्दरर से मिला और उसके साथ मदुरै की यात्रा की। सुन्दरर उनके साथ कुछ समय चेर की राजधानी में रहे और अनेक बहुमूल्य उपहार आदि लेकर तिरुवारूर की ओर लौट चले। मार्ग में डाकुओं ने सबकुछ लूट लिया। सुन्दरर ने शिव–मंदिर जाकर प्रार्थना के कई पद गाये। प्रभुकृपा से लूटी गयी सम्पत्ति उन्हें वापस मिल गयी। सम्भवतः प्रभु अपने भक्त को 'मानव' से कुछ भी ग्रहण न कर केवल उनसे ही प्राप्त करने का उपदेश दे रहे हों।

उसके बाद विविध स्थानों पर जाकर प्रभु–विग्रहों के समक्ष स्तुतिगान करते हुए सुन्दरर जब तिरुवोट्रियूर में पडम्पक्कनाथ–शिवजी के दर्शन करके लौट रहे थे तो मार्ग में इनकी भेंट चांगिलियार नामक वेलाल–कुल की कन्या से हुई। चांगिलियार को पत्नीरूप में पाने की अभिलाषा प्रबलरूप से हृदय में जगी; वे भगवान् से इसके लिये अनुरोध करने लगे। पौराणिक आख्यान के अनुसार

स्वयं शिवजी ने मध्यस्थ के रूप में कार्य करके इस विवाह को सम्पन्न करवाया। अपने 'मित्र'[1] को संकट में फँसाकर[2] उसी में आनंद लूटने की इच्छा से भगवान् ने एक खेल खेला। चांगिलियार ने नम्बि आरूरर से कहा कि मैं इस शर्त पर आपसे शादी करूँगी कि आप वचन दें कि 'मैं तुमसे कभी अलग नहीं होऊँगा।' नम्बि आरूरर ने प्रेमवश वह शपथ ले ली, विवाह हो गया। दिन पर दिन बीतते गये। एक दिन उन्हें स्मरण आया – 'तिरुवारूर में बसनेवाले भगवान् को, मेरे अपने मित्र को मैं कैसे भूल गया?' वे तुरन्त ही तिरुवारूर के लिये चल पड़े। शपथ का उल्लंघन करने के कारण तिरुवोट्रियूर की सीमा पार करते ही आरूरर(सुन्दरर) की दोनों आँखें, दृष्टिहीन हो गयीं। फिर भी त्यागेश(शिव) से मिलने के संकल्प में दृढ़ भाव से नम्बि आरूरर अपने साथियों की सहायता से मार्ग के मंदिरों में स्तुति – गान करते हुए तिरुवारूर की ओर बढ़ते रहे। पर्याप्त भटकन, शिव आराधना तथा पश्चात्ताप के बाद मार्ग में कांचीपुरम् में देवी एवं एकाम्बर की कृपा से उनके बायें नेत्र में ज्योति लौटी।

इसके बाद तिरुवारूर पहुँचकर एक आँख से भगवान् के दर्शन कर गीत – दशक गाया जिसका मूल स्वर था – 'मैं किसी अन्य के पास न जानेवाला आपका सेवक हूँ। जब आपके सेवक – भक्त अपने कष्ट और संकट का निवेदन करते हैं तब आप मौन ही रहते हैं। हे तिरुवारूर के प्रभु! आप दीर्घायु हों।' गीत – दशक के समाप्त होते ही प्रभु – कृपा से उनके दूसरे नेत्र की ज्योति भी लौट आयी। इसके बाद उन्होंने चिरकाल के विरह से रुष्ट अपनी पत्नी परवैयार को समझाने के लिये स्वयं भगवान् शिव को अपने दूत के रूप में भेजा। परवैयार के विरहजनित रोष को शान्त करके फिर उसके साथ रहते हुए वे तीर्थयात्रा पर चल पड़े।

अंधेपन की स्थिति में कवि ने अत्यन्त भावभरा तथा पश्चात्ताप की भावना से ओत – प्रोत गीतों का गायन किया था। उसे प्रभु की अनन्त कृपा पर अटल विश्वास था। नेत्र – ज्योति खो जाने के बाद उनकी भगवान् की निष्ठा में कमी नहीं हुई अपितु दैन्यभाव अपेक्षाकृत इनमें अधिक प्रबल हो गया। एक पद में उन्होंने अपने शिव से कहा –

"इस कलंकयुक्त शरीर को लेकर तुम्हारे चरणों की शरण आया हूँ। अपने पापों का दण्ड भोगने योग्य हूँ मैं; परन्तु हे नाथ! यदि दूध में गाय का गोबर गिर जाय तो उसे निकालकर दूध को ग्रहण करते हैं। मैंने भूलें की हैं पर तुम्हारे चरण को कभी नहीं भूला। कभी सन्मार्ग से भ्रष्ट

1. सुन्दरर सख्यभाव से शिवजी की भक्ति करते थे।

2. भगवान् किसी को संकट में नहीं फँसाता। परन्तु व्यक्ति के कर्मों के फलों को भुगताने के लिये घटनाक्रमों को भगवान् इस प्रकार से नियोजित करते हैं कि वे लोकदृष्टि में 'संकट' या परीक्षा कहलाते हैं। परन्तु जब इन संकटों को भक्त सहर्ष झेल लेता है तो भगवान् उसे पुरस्कृत करता है सौभाग्य एवं सुख प्रदान करके।

हुआ तो भी तुम्हारे नाम के अतिरिक्त और कुछ नहीं जाना। मेरी खोयी हुई दृष्टि को पुनः प्राप्त करने के लिये कोई औषधि की बूँद हो तो बताओ।"

अंधापन समाप्त होने पर पूर्व की ही भाँति उनका विभिन्न मंदिरों के दर्शन और गीत-गायन का क्रम चलता रहा। उनके जीवन में अनेक प्रकार के चमत्कार होते रहे। उदाहरण के लिये अपनी पत्नी परवै द्वारा उत्तरा-नक्षत्र के अवसर पर दानकर्म के लिये स्वर्ण की आवश्यकता पड़ने पर सुन्दरर ने तिरुपुहलूर में शिव की स्तुति की। पुराण-कथा के अनुसार मंदिर के प्रांगण में जिन ईंटों का आश्रय लेकर वे सोये थे, नींद खुलने पर वे ईंटें स्वर्ण की हो गयीं। इसी भाँति प्रार्थना-भाव से स्वर्ण-प्राप्ति के अनेक प्रसंग सुन्दरर की जीवन-गाथा के साथ जुड़े हैं। उनके चमत्कारिक कार्यों में से एक कोयम्बत्तूर के पास पुक्कोलिपुत्तूर शिवालय के निकट के सरोवर में मगरमच्छ द्वारा निगले गये पाँचवर्षीय बालक को पुनः प्राप्त कर लेना भी है। वहाँ पर उन्होंने दस पदों का गायन करने के साथ ही प्रभु से आग्रह किया-'आप मगर और 'कालदेव' को आदेश दीजिये कि वे बालक को सरोवर के तट पर लौटा दें।' प्रभु ने भक्त के आग्रह को स्वीकार किया। फलस्वरूप बालक स्वस्थ एवं सुरक्षित लौटा दिया गया।

सुन्दरर ने अपनी पत्नी परवैयार के पास शिवजी को दूत के रूप में भेजा था। इस घटना से सुन्दरर के समकालीन महान् संत (जो पेरियपुराणाम् के 63 संतों में से एक हैं) एयरकोन कलिक्कामर के मन में सुन्दरर पर अत्यन्त रोष का भाव था। उनका तर्क था कि सेवक सुन्दरर ने स्वामी शिव को दूतकार्य देकर अपना सेवक बनाने की भूल की है और यह अक्षम्य अपराध है। वास्तव में सुन्दरर तो शिव के प्रति सखाभाव से भक्ति कर रहे थे। परन्तु कलिक्कामर सुन्दरर के प्रति आक्रोश से युक्त थे।

ईश्वरेच्छा प्रबल है। एक बार कलिक्कामर को असाध्य उदर-रोग हो गया। स्वयं शिव ने स्वप्न में कहा-'वत्स! आरूरर (सुन्दरर) के आये बिना तुम्हारा यह रोग ठीक नहीं होगा।' कलिक्कामर ने ईश्वर की बात को काटते हुए उत्तर दिया-'भगवन्, कई पीढ़ियों से हम आपको स्वामी और स्वयं को सेवक मानते आये हैं। आरूरर तो अभी कल के बच्चे हैं जो आपकी कृपा के पात्र हुए हैं। पुराने भक्त की पीड़ा नये भक्त के द्वारा ठीक होनी है, तो उसके स्थान पर तो ठीक हुए बिना ही मर जाना श्रेयस्कर है।' इधर भगवान् ने आरूरर को कलिक्कामर के घर जाने की प्रेरणा दी। सुन्दरर को इन बातों की जानकारी नहीं थी। वे सहजभाव से अपने साथियोंसहित कलिक्कामर के घर की ओर चल दिये। यह जानकर कलिक्कामर ने तलवार से अपना पेट काटकर शरीर त्याग दिया।

कलिक्कामर की पत्नी ने मृतशरीर को घर में छिपाकर आगत अतिथि और उनके साथियों का स्वागत किया। पर सुन्दरर को घटना का पता चल ही गया। इस आत्महत्या के लिये स्वयं

को दोषी मानकर सुन्दरर ने भी अपना पेट काटना चाहा पर ईश्वरलीला से कलिक्कामर जीवित हो गये। तदनन्तर प्रभुकृपा से दोनों भक्त घनिष्ठ मित्र बन गये।

तदुपरान्त सुन्दरर चेरमान पेरुमाल् से मिले और कुछ दिन उनके साथ सत्संग किया। चेरभूमि के मंदिरों और तीर्थस्थलों के दर्शन करते हुए वे तिरुवंचिकुलम् पहुँचे और भगवान् की सन्निधि में दस पदों का गायन किया। इन पदों में उन्होंने कहा–'शिव ने मेरा सृजन किया, उस 'सृष्टि' के रहस्य को जानकर उनके स्वर्णिम चरणों की महिमा का वर्णन करते हुए मैंने गीत–रचना की। क्या आश्चर्य! कुत्तेसम मुझे सम्मान देकर स्वर्ग–निवासी देवताओं में मेरा आदर–सत्कार किया।' उसी क्षण उनके मन में इहलोक लीला समाप्त कर लेने की इच्छा उत्पन्न हुई। ईश्वर–कृपा से तत्काल ही कैलास पर्वत से एक धवल वर्ण का हाथी आया। उस पर आरूढ़ होकर वे देवों के संग कैलास की ओर प्रस्थान कर गये।

इधर चेरमान पेरुमाल् ने ज्ञानयोग से जान लिया कि मित्र सुन्दरर कैलास की ओर जा रहे हैं। वे भी तुरंत एक घोड़े पर सवार होकर तिरुवंचिकुलम् पहुँचे और घोड़े के कान में पंचाक्षर महामन्त्र का उच्चारण किया। तुरन्त वह घोड़ा भी श्वेत हाथी का पीछा करते हुए कैलास की ओर चल पड़ा। दोनों कैलास पहुँचकर शिव की दिव्यलीला में लीन हो गये।

सुन्दरर के विचार

शैवभक्तिमार्ग में त्याग–भावना का विशेष महत्त्व है। विभूति, रुद्राक्ष एवं जटा क्रमशः दैवी पवित्रता, प्रेम और त्याग के प्रतीक हैं। संसार से पलायन त्याग का लक्ष्य नहीं है। सौन्दर्य से भरपूर प्राकृतिक दृश्यों में प्रभु की ही तो रूप–छाया झलकती है। यह समस्त सृष्टि उसी की अनन्त कृपा है और इसके माध्यम से ही उससे एकतान हुआ जा सकता है। सुन्दरर की भक्ति में आध्यात्मिकता के साथ लौकिकता का सुन्दर सामंजस्य है।

'तिरुतोण्डतोगै' (सुन्दरर के काव्य का नाम), जिसका अर्थ है भगवान् के भक्तों की मण्डली, के पदों से सुन्दरर के धार्मिक एंव दार्शनिक पक्ष का परिचय मिलता है। इन पदों में शैव–परम्परा के भक्तों का विस्तृत परिचय है। चेक्किलार ने पेरियपुराण में इन भक्तों का वर्णन सुन्दरर से लगभग चार–पाँच सौ साल बाद उसी क्रम से किया है। प्रभु शिव का वर्णन करते हुए सुन्दरर उन्हें नैतिकता के समस्त गुणों से युक्त मानते हैं। वह सत्यरूप है। वह भक्तों, शैवों एवं पाशुपतों द्वारा आराधित देव, स्वामी, पशुपति और तपस्वियों का अन्तिम लक्ष्य है। वह अद्वितीय है तथा धर्मनिष्ठों के हृदय को अपना निवास–स्थान बनाता है। वह अपने भक्तों के पाप और कर्म को विनष्ट कर देता है।

तिरुवारूर के देवालय में गायी गयी पंक्तियों में अन्य बातों के अलावा तमिल के 60 शिवभक्तों

की नामावली से युक्त पद भी हैं। बाद में सुन्दरर के माता-पिता तथा स्वयं सुन्दरर को जोड़कर 63 शैव-भक्तकवियों की सूची पूर्ण हुई। यद्यपि समाज में अन्य शैवभक्त रहे होंगे पर पेरियपुराण में 63 भक्तों को ही शामिल किया गया। भक्तों के नामों की सूची को देखने से स्पष्ट हो जाता है कि इसमें ब्राह्मण, कुम्हार, व्यापारी, वेल्लाल्, गोपालक, मछुआरा, वाद्ययंत्रवादक, धोबी, शिकारी आदि सभी जाति एवं वर्गों के भक्तों का समावेश है। अत: निष्कर्ष यह है कि भक्तिमार्ग में जाति-धर्म आदि सभी बन्धन टूट जाते हैं।

सुन्दरर ने शिव को ज्ञानातीत, तत्त्वातीत, वेदातीत तथा शब्दातीत माना है। उच्च स्तरोंतक पहुँचे ज्ञानी भी उसे अथवा उसकी अनन्ता को जानने में असमर्थ रहते हैं। वे युवा एवं अत्यन्त वृद्ध हैं। शिव भिक्षुक क्यों बने इसे रहस्यात्मक शैली में समझाते हुए सुन्दरर ने कहा है कि-वे भिक्षुक बने क्योंकि उनके पास कुछ नहीं है, पुन: वे भिक्षुक बने क्योंकि उनके पास सब कुछ है-'कुछ नहीं' अर्थात् उनका नामरूप आदि कुछ नहीं है, 'सब है' अर्थात् वही मूल हैं, सत्य हैं, अधिष्ठान हैं; वे आदि के भी आदि हैं, मूलतत्त्व हैं; सत्य कारण हैं एवं सृष्टि के स्वामी हैं।

सुन्दरर प्रभु को अनुभवगम्य मानते हैं। वह पुष्प की सुगन्धि के सदृश है, सौन्दर्य एवं मंदिर में प्रतिष्ठित प्रभु के रूप में हमारे सर्वाधिक निकट है, वह अमृत है, औषधि है, काल है, कालातीत है और वह गुरू-रूप में आशीर्वाद देनेवाला है। वह शम्भु है, शंकर है, सभी दु:खों, कामनाओं और आकांक्षाओं से मुक्त कर सत्य आनन्द प्रदान करनेवाला है। प्रकृति शिव का ही रूप है। शिव ही सृष्टि, संहार एवं पालन करनेवाला है। शिव की अष्टमूर्तियों का भी उल्लेख सुन्दरर ने किया है। सुन्दरर के अनुसार पेड़-पौधे, पशु, पक्षी, मानव आदि सब एक शिव के ही परिवार हैं। शैवमान्यताओं के 96 तत्त्वों का भी उल्लेख सुन्दरर ने किया है।

शैव-सिद्धान्त का पवित्र पंचाक्षरमन्त्र **'नमः शिवाय'** का भाव, सुन्दरर के अनुसार, है-शिव के प्रति नमन, मैं 'स्व' का नहीं अपितु 'शिव' का हूँ। अर्थात् पूर्ण शरणागति की भावना को यह मन्त्र व्यक्त करता हैं। 'य'-आत्मा, 'वा'-ईश्वरीय कृपा, 'शि'-पूर्ण, 'न'-ईश्वरीय शक्ति जो सत्य की अवरोधक है और 'म:'-मल अथवा अज्ञान वा अपूर्णता का द्योतक है। सुन्दरर ने अपनी कविता में इसी प्रकार से **'नमः शिवाय'** के अक्षरों की व्याख्या की है। वे कहते हैं कि 'मैं यदि भूल भी जाऊँ तो मेरी जिह्वा सत्यरूप **'नमः शिवाय'** ही कहेगी। इस प्रकार सुन्दरर **'नमः शिवाय'** मंत्र के महत्त्व को बतलाते हैं।

माणिक्कवाचकर

नालवरों (चार महान्) में 'तिरुवाचकम्' के कवि माणिक्कवाचकर को जो सम्मान प्राप्त हुआ है, वह अभूतपूर्व है। वे 'अध्यात्म-विद्या' में पारंगत थे। इनके 'तिरुवाचकम्' में परमप्रिय परमात्मा

की ओर एक यात्रा का वर्णन है। इनका वर्णन यद्यपि 'पेरियपुराणम्' में नहीं पाया जाता फिर भी इनका काफी महत्त्व है। इनका पेरियपुराणम् में उल्लेख न होने के कारण यह माना जाता है कि ये उस पुराण के लिखे जाने के बाद पैदा हुए।

माणिक्कवाचकर के जीवनविषयक उपलब्ध प्रामाणिक सामग्री अधिक नहीं है। उपलब्ध जानकारी के अनुसार इस महात्मा ने मदुरै के निकट तिरुवादऊर नामक स्थान में एक ब्राह्मण के घर (संभवतः 9वीं शती में) जन्म लिया। 16 वर्ष की उम्र में इन्होंने अपने समय के विद्वान् ब्राह्मणों से सारी विद्या सीख ली और शैवधर्मशास्त्र का विशेष रूप से मनन किया। उनकी विद्या एवं बुद्धि की प्रशंसा पाण्ड्य राजा के कानोंतक पहुँची। राजा ने उनको आदरपूर्वक बुलाकर प्रधान मंत्री बनाया। पाण्ड्य राजा के दरबार में उन्हें सभी सुख प्राप्त थे परन्तु उन्हें यह सदा रहता कि ये बाहरी सुख केवल आत्मा को बन्धन में डालनेवाले हैं और मुक्ति की चाह रखनेवालों को इनका त्याग करना पड़ेगा। जीवों को जन्मभर असंख्य दुःख सहते देख उन्हें बहुत दुःख होता। उनका हृदय शिव को प्राप्त करने के लिये सदा बेचैन रहता। वे न्यायपूर्वक राज्य को अच्छी तरह से चलाते रहे, परन्तु उनके हृदय में सदा किसी ऐसे सद्गुरु से मिलने की अभिलाषा बनी रहती थी, जो उन्हें मुक्ति का मार्ग दिखलाता। जिस प्रकार भौंरा रस के लिये फूलों के पास दौड़ता रहता है, उसी प्रकार वे ज्ञानरस की प्राप्ति के लिये विभिन्न शैवगुरुओं की शरण लेते रहे, परन्तु उनके मन को किसी प्रकार संतोष न हुआ। एक दिन किसी ने सूचना दी कि एक जहाज पड़ोस के राजा के बंदरगाह में खड़ा है जिसमें किसी दूसरे देश से घोड़े आये हैं। राजा ने इस बात को सुनकर काफी रुपये देकर माणिक्कवाचकर को घोड़े खरीदने के लिये भेजा। मन्त्री ने सिपाहियों के एक दल को साथ ले प्रस्थान किया। उनके सांसारिक जीवन का यह अन्तिम प्रदर्शन था।

उसी समय कैलास में उमा से शिव ने कहा कि–'हे प्रिये! मैं मनुष्यरूप में उस महापुरुष का गुरु बनने जा रहा हूँ जो दक्षिण के तामिल–प्रदेश को भक्तिसुधा से परिप्लावित करेगा।' वे तत्काल ही एक सघन वृक्ष के नीचे अपनी शिष्यमण्डली के सहित विराजमान हो गये। उस बंदरगाह के समीप वन में भगवान् शिव ने अपना आसन जमाया, वहाँ चारों ओर बिना ऋतु के ही वृक्षलताएँ मञ्जरित और पुष्पित हो गयीं। उसी समय वह युवक मन्त्री अपने साथियों के साथ उस रास्ते से होकर निकला और उसे वन में से शिव–स्तोत्रों की ध्वनि सुनायी पड़ी। उसने अपने एक अनुचर को उस दिव्य गान का पता लेने के लिये भेजा। थोड़ी ही देर में उसे ज्ञात हुआ कि साक्षात् शिव के समान एक महात्मा वन में एक बड़े वट के नीचे विराजमान हैं। तुरन्त वह घोड़े से उतर पड़ा और विनीत भाव से उन महात्मा की ओर अग्रसर हुआ। उनके तीसरे नेत्र की ज्योति से जान पड़ता था कि वे साक्षात् शिव हैं। उसने पता लगाया कि वे महात्मा अपने शिष्यों को किस

धर्म का उपदेश कर रहे हैं। अन्त में वह शिवभक्ति के धर्म में दीक्षित हुआ और समस्त सांसारिक ऐश्वर्यों को छोड़कर गद्‌गद्‌कण्ठ से आँसू बहाते हुए गुरु के चरणों पर गिर पड़ा। सद्‌गुरु के द्वारा साधनपथ में अग्रसर होने के पश्चात् ही वह जीवनमुक्त हो गया। उसने तन में भस्म रमा, जटाजूट धारण किया। यही क्यों, उसने जो कुछ द्रव्य राजा से घोड़े खरीदने के लिये लिया था उसे वहाँ संतों की सेवा में लगा दिया।

राजपुरुषों ने आकर उसे रोका और कहा कि राजा के धन को दान करने का तुम्हें कोई अधिकार नहीं है। परंतु मंत्री ने उत्तर दिया–'तुम लोग मुझे पुनः सांसारिक झंझटों में क्यों घसीटते हो!' इस पर वे लोग मदुरै लौट गये और राजा से जाकर उस युवक मन्त्री का सारा हाल कह सुनाया। राजा बहुत की कुपित हुआ और एक कड़ी आज्ञा लिखकर मन्त्री को शीघ्र ही दरबार में उपस्थित होने का हुक्म दिया। इस पर मन्त्री ने जवाब दिया कि–'मैं शिव को छोड़कर किसी को राजा नहीं मानता, उनके पास से तो यम के दूत भी मुझे नहीं ले जा सकते।'

तथापि शिवजी ने उससे कहा कि डरो मत, मदुरै लौट जाओ और राजा से जाकर कह देना कि घोड़े ठीक समय पर उसके यहाँ चले आयेंगे। तदनन्तर शिवजी ने उसे एक सुन्दर सवारी और एक बहुमूल्य लाल देकर विदा किया।

उसके राज्य में पहुँचने पर पहले तो राजा को विश्वास हो गया था कि उसके घोड़े आ जाँयगे, परन्तु दूसरे दरबारियों के मुख से मन्त्री की सारी कहानी सुनकर उसको सन्देह हुआ और घोड़ों के आने की निश्चित तारीख से दो दिन पूर्व ही उसने मन्त्री को कैदखाने में डलवा दिया।

परन्तु भगवान् शिव अपने शिष्य को भूले नहीं थे। उन्होंने गीदड़ों का एक झुण्ड इकट्ठा कर उन्हें घोड़ों के रूप में बदल डाला और देवताओं को साईस के वेष में बदलकर स्वयं उस सौदागर का रूप धारण किया जो उन घोड़ों का मालिक था। राजा इनको देखते ही बहुत प्रसन्न हुआ और मन्त्री से क्षमा माँगते हुए उसे मुक्त कर दिया। घोड़े खोल-खोलकर राजा के अस्तबल में भेज दिये गये और वेष बदले हुए देवताओं ने भी अपना रास्ता लिया।

सुबह होने के पहले ही गीदड़ों की भयानक आवाज से सारा नगर जाग उठा। घोड़े अब पुनः गीदड़ हो गये थे और इसके साथ ही एक और आफत यह हुई कि वे अस्तबल के घोड़ों को काटने लगे। राजा को मालूम हो गया कि उसके साथ घोखा किया गया है, उसने उस मन्त्री को पकड़वाकर उसके सिर पर पत्थर रखकर धूप में खड़ा कर दिया। मन्त्री ने प्रभु की प्रार्थना की। शिवजी ने इसके बदले में अपनी जटा से गंगा की धारा बहाकर नगर को जलमग्न कर दिया। अब राजा को अपनी भूल सूझी, उसने उस महात्मा(मन्त्री) को एक प्रतिष्ठित पद पर बिठा दिया और नगर की रक्षा के लिये बाँध बँधवाने लगा। यह काम हो जाने पर राजा ने अपना राज्य उस महात्मा को भेंट कर दिया। परन्तु माणिक्कवाचकर ने राज्य भोगने की अपेक्षा वहीं जाना अच्छा

समझा जहाँ उसने भगवान् शिव का पहले-पहल दर्शन किया था। वहाँ उसने गुरु के चरणों का आश्रय लिया। शिवजी का काम अब हो गया था, वे कैलास चले गये और उन्होंने तामिल-प्रान्त में भक्ति-धर्म के प्रचार का काम अपने इस भक्त के ऊपर छोड़ दिया।

तब से ये महात्मा शिवजी का गुण गाते नगर-नगर घूमने लगे। इससे उनकी बड़ी ख्याति हुई। अन्त में वे उस तीर्थभूमि चिदम्बरम् में पहुँचे जहाँ शिव का दैनिक नृत्य होता था और जहाँ व्याघ्रपाद नामक महात्मा का निवासस्थान था। यहाँ वे महात्मा प्रभु के अन्तिम मिलनतक पड़े रहे। कुछ दिनों के बाद एक अज्ञात महान् विद्वान् ने अकस्मात् प्रकट होकर सिंहलद्वीप के विद्वान् बौद्धभिक्षुओं को पराजित* किया और इन महात्मा के मुख से निकले हुए दिव्य ज्ञान को लिपिबद्ध किया। यह काम पूरा होने के बाद वह अन्तर्धान हो गया। यह भगवान् शिव के सिवा दूसरा कोई न था। शिवजी ही देवताओं को आनंदित करने के लिये उनके लिपिबद्ध संगीतमय ज्ञान को शिवलोक ले गये। दूसरे दिन प्रातःकाल शिवजी के हस्ताक्षरसहित एक पूरी प्रति देवमंदिर में पड़ी मिली। मंदिर के सब भक्त उस महात्मा के पास इस रहस्य को समझने के लिये पहुँचे। वे उन सबको अपने पीछे-पीछे स्वर्ण-मंदिर में शिवमूर्ति के पास लिवा ले गये, और 'इसका यही अर्थ है' इतना कहकर वे स्वयं अन्तर्धान हो गये और उनका शरीर मूर्ति के रूप में रह गया। इसके पश्चात् उनका फिर किसी को दर्शन न मिला।

माणिक्कवाचकर के विचार

माणिक्कवाचकर दार्शनिक दृष्टि से जीव एवं शिव के अभेद रूप को काव्य में अभिव्यक्त करते हुए अनेक मंदिरों और तीर्थ-स्थलों में भ्रमण करते रहे। उनके प्रमुख ग्रन्थ 'तिरुवाचकम्' में ईश्वर की अगाध करुणा के रहस्यों को जानने की चेष्टा है। तिरुवाचकम् के प्रारंभिक अंश 'शिवपुराणम्' में कवि कहता है कि-'शिव स्वयं मेरे हृदय में आये और स्थिररूप से निवास करने लगे। उसी के फलस्वरूप उनकी कृपा के कारण मैं उनके चरणों की पूजा में समर्थ हूँ।' तिरुवाचकम् के चिन्तन, दर्शन तथा काव्य का मूल स्वर यही कृपा(अरुल्) है। 'तिरुवाचकम्' 656 पद्यों की रचना है जो 51 शीर्षकों में विभक्त है तथा शिव-भक्ति की भावना से ओत-प्रोत है।

'शिवपुराणम्' शीर्षक के प्रथम पद में कवि ने **'नमः शिवाय'** पंचाक्षर की स्तुति की है-

"पंचाक्षर की जय हो! नाथ के चरणों की जय हो। निमिषमात्र के लिये मेरे हृदय से दूर न होनेवाले के चरणों की जय हो।"

उनके प्रभु 'अगम' हैं। वही 'एक' है, वही 'अनेक' है। वही ईश है। तिरुवाचकम् की गहनता

* कहीं-कहीं पर यह भी आता है कि चिदम्बरम् क्षेत्र में श्रीलंका से आये बौद्ध आचार्यों को माणिक्कवाचकर ने स्वयं पराजित कर शैव-भक्ति के महत्त्व की स्थापना की थी।

एंव गम्भीरता का पता इस बात से चलता है कि अरुल्नन्दी शिवाचार्य एवं उमापति शिवम् ने इसमें शैव-सिद्धान्त के दार्शनिक तत्त्वों के प्रमाणों की खोज की है। राधाकृष्णन् ने तिरुवाचकम् को भारतीय चिन्तनधारा की अभूतपूर्व कृति मानते हुए कहते हैं-

"तिरुवाचकम् आत्मा को अज्ञान एवं तृष्णा आदि बन्धनों से मुक्त कर सच्चिदानन्द प्रेमस्वरूप भगवान् के प्रासाद में प्रवेश कराकर उस आत्मा के ज्ञानचक्षु को खोलकर उससे प्राप्त आनंद, गौरव-गरिमा का तथा साथ ही मानसिक अशांति, अस्थिरता और संघर्ष को दूर कर परब्रह्म के साथ एकाकार होने से उत्पन्न अनिर्वचनीय आनंद और शान्ति का सुन्दर चित्रण करता है।"

तिरुवाचकम् के अनुसार ईश्वर के अन्तर्ज्ञान में ज्ञाता, ज्ञान और ज्ञेय का भेद विलुप्त हो जाता है। तिरुवाचकम् के आराध्यदेव(शिव) 'करुणा के सागर', 'आत्मा को द्रवित करने के लिये अनंत आनंद-अश्रु प्रदान करनेवाले', अर्द्धनारीश्वर तथा 'कृपादृष्टि से मृत्यु एवं जन्म के चक्र से मुक्त करनेवाले' हैं। शिवजी संपूर्ण सृष्टि के आदि हैं। वे अनन्त हैं। वे ही सबके स्वामी हैं।

शैव-सिद्धान्त के सभी तत्त्व तिरुवाचकम् में प्राप्त होते हैं। इसमें **'नमः शिवाय'** मन्त्र की महत्ता भी स्वीकार की गयी है। कोई गीत गाता है, कोई भजन करता है, कोई योगसाधना करता है पर माणिक्कवाचकर चर्या, क्रिया एवं योग के मार्गों को लाँघकर गुरु-कृपा के फलस्वरूप परम-ज्योति के दर्शन प्राप्त करने की बात करते हैं।

माणिक्कवाचकर की रचना 'तिरुच्चालल' ईश्वर(शिव) विषयक पहेली है। इन पहेलियों तथा वार्तालाप के माध्यम से शैव-सिद्धान्तों का सरल भाषा में स्पष्टीकरण हुआ है। विभिन्न पौराणिक सन्दर्भों का मूल अर्थ उद्घाटित करना तथा शिव के अनेक रूपों एवं कृत्यों का आध्यात्मिक अर्थ प्रकट करना कवि का मुख्य लक्ष्य रहा है। नित्यमुक्त शिव के स्वभावसिद्ध, नित्य, निर्मल, निरतिशय, अर्थ-ज्ञान-क्रियाशक्ति-समन्वित रूप का विवेचन इसका विषय है। तिरुवाचकम् का मुख्य उद्देश्य सच्चिदानन्द-स्वरूप, सत्य, नित्य, आद्यन्तरहित और सर्वशक्ति समन्वित उस परम शिव-ब्रह्म की भक्ति है। तिरुच्चालल में प्रभु की असीम कृपा, अहंकार को दूर करने की अपरिमित शक्ति और अनन्त दया का उल्लेख अत्यन्त सरल तरीके से किया गया है।

(उपर्युक्त लेख मुख्यतः डॉ. रवीन्द्र कुमार सेठ द्वारा लिखित 'तमिल शैवभक्त कविः नायन्मार्' तथा सचित्र पेरिय-पुराणम् जो साहित्य शोध संस्थान दिल्ली से क्रमश 1993 एंव 1994 में प्रकाशित हुए है, पर आधारित है। अन्तिम भक्त 'माणिक्कवाचकर' के जीवनचरित्र लेखन में गीताप्रेस गोरखपुर द्वारा प्रकाशित 'शिवांक' से भी सहायता ली गयी है।)

❁❁❁❁❁❁